अनित्य भावना

□ आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरि जी

परम करुणानिधि भगवान महावीर का शासन सभी प्राणियों के लिए कल्याणरूप रहा है। उनके शासन में अनेक महान साधक, योगी, तपस्वी आचार्य, उपाध्याय और मुनि हुए हैं जिन्होंने स्व और पर कल्याण में अपना जीवन यापन किया है। उपाध्याय श्री विनय विजयजी महाराज भी एक ऐसे ही योगी और साधक हुए हैं। उन्होंने कई आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना भी की है। उनकी एक उत्कृष्ट रचना है 'शान्तसुधारस'। इस ग्रन्थ में उन्होंने बारह भावनाओं का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने सर्वप्रथम स्थान अनित्य भावना को दिया है। इन भावनाओं पर बहुत कुछ कहा और लिखा गया है, फिर भी इनकी गहनता वैसी ही है। यहां अनित्य भावना का विवेचन उपयुक्त और उपयोगी है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग का तथाकथित प्रगतिशील मनुष्य अधिक से अधिक विकेन्द्रित होता जा रहा है। वह अपनी जमीन से उखड़ रहा है। सुख नाम की मृगतृष्णा की प्यास बुझाने के लिए वह बेतहाशा भागा जा रहा है। बाहर की चकाचौंध ने उसे इस कदर आकर्षित किया हुआ है कि उसने अपने भीतर पैठकर अपने विषय में सोचना ही बंद कर दिया है। उसकी दृष्टि उसकी सोच इतनी सीमित और संकीर्ण हो गई है कि मैं कौन हूं? संसार में आने का मेरा क्या उद्देश्य है? जीवन क्या है? मुझे अन्त में कहां जाना है? क्या प्राप्त करना है? संसार का और मेरा क्या सम्बन्ध है? इस तरह के मूलभूत प्रश्न, जिनके विषय में उसे सोचते रहना चाहिए। उसके लिए न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह समय निकालता है न कोई प्रयत्न ही करता है। स्वयं का और संसार का पृथक्करण करने की क्षमता उसने खो दी है। यही कारण है कि इतनी प्रगति और उन्नति के बावजूद वह सुखी होने के बजाय दुःखी, संत्रस्त और अशान्त ही अधिक हुआ है।

'स्व और पर का निर्णन करना एवं परिणति की निर्मलता करना' यह जैन दर्शन का प्रमुखनीति वाक्य है। इसी सन्दर्भ में अनित्य भावना का अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि बिना अनित्य भावना के न स्व और पर का निर्णय हो सकता है और न ही परिणति निर्मल हो सकती है।

संसार और सांसारिक पदार्थों को न तो झूठा समझना है न स्वप्न समझना है। उन्हें अनित्य और परिवर्तनशील समझना है, ताकि उनके प्रति हमारी आसक्ति न हो। जैन धर्म त्याग और वैराग्य प्रधान धर्म है। त्याग और वैराग्य की पुष्टि तब होती है जब संसार और सांसारिक पदार्थों और सम्बन्धों की वास्तविकता समझमें आती है। अनित्यता संसार की वास्तविकता है। इसलिए जैन संतों ने वैराग्य के गीत गाए हैं। इस अनित्यता का अनुभव करना, देखना, परखना और जांचना अनित्य भावना है। इस अनित्य भावना से भावक की दृष्टि जागृत रहती है। जो अनित्य भावना भाएगा, वह भीतर से जागृत रहेगा। यह अनित्य भावना जागृति का संदेश देती है।

संसार और सांसारिक भोग्य पदार्थों के प्रति आसक्ति रखना ही व्यक्ति के दुःख का कारण है। आसक्ति या ममत्व दुःख का मूल है। व्यक्ति की सारी अशान्ति व्यक्ति की सारी परेशानियां व्यक्ति के सारे कष्टों का जन्म आसक्ति से होता है। व्यक्ति दुःखी है, दुःखी होता है क्योंकि वह संसार के प्रति आसक्त है। और तब यह आसक्ति दस गुना बढ़ जाती है, जब व्यक्ति संसार को सांसारिक वस्तुओं को वास्तविक, नित्य अपना और अपरिवर्तनीय मानने लगता है। जितनी यह आसक्ति गहरी होगी, व्यक्ति का दुःख भी उतना ही गहरा होगा।

संसार में अक्सर ऐसा दिखाई देता है कि जब किसी की फैक्ट्री में या दूकान में आग लग जाती है और जब उसके मालिक को यह खबर दी जाती है कि आपकी फैक्ट्री या दूकान जलकर राख हो गई है तो उसे उस फैक्ट्री या दूकान नष्ट होने का हादसा इतने गहरे रूप में प्रभावित कर जाता है कि उसे हार्ट अटैक हो जाता है। वह सुन्न हो जाता है। उसे न खाना भाता है न पीना। वह भीतर से टूट कर बिखर जाता है क्यों? क्योंकि उसकी उन चीजों के प्रति गहरी आसक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी। उन चीजों को उसने हृदय से अपना माना था।

अपने आपको इन जड़ वस्तुओं से बांधना नहीं है। चाहे बड़ी शानदार कोठी हो, चाहे कार हो, चाहे दूकान हो चाहे पैसा हो फैक्ट्री हो चाहे पत्नी हो, (पत्नी के लिए पुरुष) चाहे पुत्र हो पुत्री हो चाहे पोता-प्रपोता हो, चाहे स्वयं का शरीर ही क्यों न हो। उनसे अपना हार्दिक स्नेह नहीं जोड़ना है। उन्हें अपना मानते हुए भी इस दृष्टिकोण का विकास करना है कि यह सब मेरा नहीं है। एक दिन यह सब मुझसे अलग होने वाला है। यह अनित्य और परिवर्तनीय है। यह कभी भी किसी भी क्षण मेरे हाथ से चला जा सकता है। जब वस्तुओं को इस प्रकार देखने की कला व्यक्ति को प्राप्त हो जाएगी तो ये चीजें सब उससे दूर हो जाएगी। संयोग से उसका पुत्र मर जाता है या संयोग से यदि दूकान या फैक्ट्री में आग लग जाती है तब वह रोएगा चिल्लाएगा नहीं, हाय-हाय करके छाती नहीं पिटेगा, मैं लूट गया मैं बरबाद हो गया, का शोर नहीं मचाएगा। उसे हार्ट अटैक नहीं होगा। वह खाना-पीना नहीं भूलेगा। उसके ओठों से मुस्कराहट गायब नहीं होगी। तब वह तटस्थ रहेगा। वह सोचेगा कि यह तो अनित्य था, नश्वर था, एक दिन नष्ट होने ही वाला था, कल न हुआ आज हो गया। इसमें रोने की क्या बात है। मेहनत करके इन्हें फिर पा लेंगे।

जो जिन का अनुयायी सच्चा जैन होता है, श्रावक होता है उसका दृष्टिकोण ऐसा ही होता है। यह जीवन जीने की कला है। अनित्य भावना व्यक्ति में इस कला का विकास करती है। यह व्यक्ति के भ्रम को दूर करती है। स्व और पर के अन्तर को स्पष्ट करती है।

अनित्य भावना जीवन से पलायन नहीं है। यह तो जीवन से जूझने का संदेश देती है। सब कुछ अनित्य है, हाथ से चला जाने वाला है, क्षण में नष्ट होने वाला है, परिवर्तनशील है। यह सोचकर नकारात्मक या निराशात्मक दृष्टि का विकास नहीं करना है। यह सोचकर हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहना है। यह सोचकर सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना है। यह सोचकर प्रचंड पुरुषार्थी बनना है। यह जीवन, यह यौवन, यह संपत्ति, यह अवसर फिर कहां ? यह सोचकर इन्हें शुभ प्रवृत्तियों की ओर एक धार्मिक मोड़ देना है। जीवन, जगत और मृत्यु के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास करना है।

मनुष्य अपने जीवन, यौवन, संपत्ति और शरीर पर अत्यधिक आसक्ति रखता है जीवन के विषय में कहा जाता है 'जीवन जगत में ऐसा सावन के मेघ जैसा'। यह जीवन की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तविकता है। सावन महीने में आकाश में जो बादल छाये रहते हैं वे एक ही क्षण में बिखर जाते हैं। जैसे सावन के बादल कब बिखर जाएंगे, यह किसी को कोई पता नहीं होता, वैसे ही जीवन का कब, कैसे, कहां और किस स्थिति में अन्त हो जाएगा, कहा नहीं जा सकता। जीवन अनिश्चित है और मृत्यु निश्चित है। मनुष्य बचपन में भी मर सकता है और युवावस्था में भी। वह चलते हुए भी मर सकता है और बैठे हुए भी। वह दूकान पर भी मर सकता है और ऑफिस में भी। वह देश में भी मर सकता है और विदेश में भी। वह गांव में भी मर सकता है और शहर में भी। वह ट्रेन में भी मर सकता है और प्लेन में भी। वह स्कूटर पर भी मर सकता है और कार में भी। वह हार्ट अटैक से भी मर सकता है और एक्सिडैन्ट से भी। वह कहीं भी किसी भी स्थान पर किसी भी हालत में मर सकता है। इतना जीवन अनिश्चित है। ऐसे जीवन का कैसे भरोसा किया जा सकता है। जीवन इतना अनिश्चित है, फिर भी व्यक्ति इस तरह जीता है, मानो वह अमर रहने वाला हो। वह जीवन की अनिश्चितता और मृत्यु की अनिवार्यता भूल जाता है, इसलिए संसार के प्रति आसक्त रहता है। इस आसक्ति को कम करने का एक ही उपाय है, जीवन के अन्तिम सत्य मृत्यु को सदा दृष्टि समक्ष रखा जाए।

मनुष्य के जीवन में एक ऐसी अवस्था आती है जिस अवस्था में वह अविवेक को सर्वाधिक प्रधानता देता है। वह अवस्था ही उन्माद और अविवेक की है। वह अवस्था है यौवन की। इस अवस्था में व्यक्ति संसार के प्रति सबसे अधिक आकर्षित और आसक्त रहता है। इस यौवन की अस्थिरता और चंचलता का न्यायांभोनिधि आचार्य श्री विजयानंद सूरीश्वरजी महाराज ने बड़ा ही मनोहारी वर्णन सरल भाषा में किया है:-

यौवन धन स्थिर नहीं रहनारे,
प्रातः समे जो नजरे आवे, मध्य दिने नहीं दीसे।
जो मध्याने सो नहीं राते, क्यों विरथा मन हींसे॥
पवन झकोरे बादल विनसे, त्यां शरीर तुम नासे।
लक्ष्मी जल तरंगवत चपला, क्यों बांधे मन आसे॥
प्रिया संग सुपन की माया, इनमें राग ही कैसा?
छिन में उड़े अर्कतूल ज्यूं, यौवन जग में ऐसा॥
चक्री, हरि पुरंदर राजे मदमाते रसमोहे।
कौन देश में मरकर पहुंचे, तिन की खबर न कोये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जग माया से तुम नहीं लुभाना, आतम राम सयाने ।
अजर-अमर तू सदा नित्य है, जिन धुनि यह सुनि काने ॥

संसार का प्रत्येक दृश्य और पदार्थ परिवर्तित होता रहता है । इतिहास इन परिवर्तनों का दस्तावेज होता है । ये सभी परिवर्तन आदमी की आंखों के सामने होते हैं । जो प्रातः काल के समय दिखाई देता है, वह दुपहर को दिखाई नहीं देता और जो दुपहर को दिखाई देता है वह शाम को दिखाई नहीं देता और जो शाम को दिखाई देता है वह रात को दिखाई नहीं देता । प्रातः दुपहर, शाम और रात परिवर्तन के प्रत्यक्ष उदाहरण है । यौवन उसी तरह शरीर से ढल जाता है जैसे देखते ही देखते दुपहर ढ़ल जाती है । जीवन का उसी तरह अन्त हो जाएगा, जैसे सूर्यास्त होता है ।

दुःख की बात यह है कि मनुष्य को कल का भरोसा नहीं होता । यह कोई नहीं कह सकता कि कल क्या होगा ? केवल सर्वज्ञ भगवान को छोड़ कर । सभी का भविष्य अनिश्चित होता है । कहा भी जाता है न जाने जानकीनाथ । प्रभात किं भविष्यति ।

बड़े-बड़े ज्योतिषियों ने राम के राज्याभिषेक का मुहूर्त निकाला । घोषणा हो गई कि कल राम का राज्याभिषेक होगा । राम अयोध्या के राजा बनेंगे । इस समाचार ने चारों और आनंद का साम्राज्य फैला दिया । इस राज्याभिषेक को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आए । राज्याभिषेक की पूर्ण तैयारियाँ हो चुकी थी । केवल एक रात बीच में थी । सभी बेसब्री से प्रातः काल होने का इंतजार करने लगे । रात बीती । सूर्योदय भी हुआ, पर राम के राज्याभिषेक के स्थान पर उन्हें वनवास हो गया । एक रात ने राज्याभिषेक के आनंद को वनवास के विषाद में बदल दिया ।

मनुष्य के ममत्व का एक और महत्त्वपूर्ण स्थान है- उसका शरीर । आदमी अपने शरीर की साज-सज्जा से ही ऊपर नहीं उठ पाता । उसके जीवन का आधा हिस्सा दर्पण के आगे बितता है । रूप सज्जा के इस क्षेत्र में आजकल का महिला समाज सबसे आगे है । बाजार की दूकानें ब्यूटी के तरह-तरह के साधनों से भरी रहती हैं । शहरों में इस शरीर की सुन्दरता को और आकर्षक बनाने के लिए ब्यूटी पार्लर चलते हैं । पत्रकार लोग सौंदर्य विशेषांक निकालते हैं, पर ब्यूटी के वे अधिकतर प्रसाधन जीवों की हिंसा से बने होते हैं । तरह-तरह के ये पाऊडर, क्रीम, शेम्पू, साबुन, लिपस्टिक और सिल्क आदि न जाने कितनी ही चीजें हैं शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के लिए । लोग इन चीजों का प्रयोग खुल कर करते हैं । वे लोग यह भूल जाते हैं कि ये चीजें असंख्य, मूक निरीह प्राणियों के खून से रंगी हुई हैं । यह होठों पर लगा लिपस्टिक, लिपस्टिक नहीं है यह प्राणियों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खून है। तुम्हारें होठों पर लिपस्टिक नहीं लगती है खून लगा हुआ है। शेम्पू की यह सुगंध, सुगंध नहीं है यह मूक प्राणी की चीत्कार है। यह जो तुम सॉफ्ट मीनिबेग बगल में दबा के घूमते हो, वह बेग नहीं यह खरगोश का मरा हुआ छोटा बच्चा है। जो जैन समाज अपने आपको अहिसा का पुजारी होने का गर्व रखता है उस के लिए इस प्रकार की हिंसक चीजें सर्वथा त्याज्य है। क्या महिलाएं इन चीजों का प्रयोग न करके उन मूक प्राणियों की हिंसा में सहभागी होने से नहीं बच सकती? नारी हृदय को कोमल कहा जाता है, वह दूसरे का रूदन और चीत्कार सुनकर पिघल जाती है, पर यह धारणा अब गलत हो रही है। अब महिलाओं का हृदय भी पत्थर जैसा कठोर हो गया है ऐसा लगता है उनमें से करूणा का कोई झरना अब फूटता नहीं है। आधुनिक हिंसक सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग क्या उनके कठोर पत्थर हृदय होने का परिचायक नहीं है। जिसका हृदय अहिंसा और करुणा से भरा हो वह क्या अपने होठ लिपस्टिक बनाम खून के रंग से रंग सकती हैं? क्या ऐसा पुरुष शेम्पू का प्रयोग कर सकता है? जो सौंदर्य प्रसाधन जितने महंगे होते हैं, इतने ही हिंसक होते हैं। और इन चीजों का प्रयोग करने वाला चाहे पुरुष हो या स्त्री पाप के सहभागी अवश्य बनते हैं। इन हिंसक सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग न करने से कोई कुरुप नहीं बन जाता। सादगी, सुरुचि और प्रकृति की ओर से मिली हुई सुन्दरता ही वास्तविक सुन्दरता है। सुन्दरता आन्तरिक गुणों के विकास से बढ़ती है न कि ब्यूटी के प्रसाधनों से। विवेक, नम्रता, मृदुता और सेवा आदि गुणों से स्वयं को सजाइए, इन गुणों से सभी आकर्षित होंगे। शेष तो भ्रम है। किसी को धोखा देना है। और इन सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग क्यों? किसलिए? उस शरीर के लिए जो मिट्टी का पुतला है। जो मिट्टी से बना है और मिट्टी में मिल जाएगा। जो शमशान में जलकर राख बन कर हवा में उड़ जाता है। जो बाल एक दिन सफेद होकर झड़ जाने वाले हैं। जिस चेहरे पर एक दिन झुर्रियां छाने वाली हैं। जिन आंखों से एक दिन देखना बंद होना है। जो दांत एक दिन उखड़ जाने वाले हैं। जो शरीर एक दिन जरा से जर्जरित होने वाला है, उस क्षणभंगुर, अनित्य, अस्थिर शरीर के लिए इतना परिश्रम, उसके पीछे जीवन का इतना कीमती समय गंवाने की क्या आवश्यकता है? उस नश्वर शरीर की सुन्दरता के लिए इतनी हिंसा, इतना पाप करने की क्या जरूरत है? इस मिट्टी के पुतले को इतना सजाने-संवारने से कोई लाभ है? क्या शरीर इसी के लिए है? क्या दुर्लभ मनुष्य देह इन कामों के लिए हैं? क्या इस पार्थिव सौंदर्य से ऊपर नहीं उठा जा सकता? शरीर मिला है, साधना के लिए। आन्तरिक गुणों के विकास केलिए। शरीर के भीतर जो अनंत निद्रा में सोया हुआ है और जो अनंत शक्ति का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी है उस आत्मा की साधना के लिए। शरीर की स्मृति में आत्मा की स्मृति खो जाती है। शरीर की सुन्दरता में आत्मा की सुन्दरता गायब हो जाती है। लोग शरीर को तो सजाते हैं, संवारते हैं, साबुन मलमल कर साफ रखते हैं, पर आत्मा को कुरूप छोड़ देते हैं। आत्मा के आधार पर शरीर टिका हुआ है। जिस दिन इस शरीर में से आत्मा निकल जाएगी, उसदिन शरीर निर्जीव और जड़ हो जाएगा। उस दिन शरीर का कोई मूल्य नहीं रहेगा। उस दिन उसे कोई सौंदर्य प्रसाधन बचा नहीं सकेगा। उस आत्मा की इतनी उपेक्षा क्यों। शरीर के माध्यम से आत्मा की साधना करनी चाहिए। शरीर की वह खूबसूरती किस काम की, जो आत्मा को बदसूरत बना दें। असली सौंदर्य अजर-अमर चेतन आत्मा का है न कि नश्वर-मृत शरीर का।

गुजरात में उपाध्याय कवि उदयरत्नजी हुए हैं। उन्होंने वैराग्य के कई उत्तम पद गुजराती भाषा में लिखे हैं। उनका एक पद वैराग्य का हूबहू दृश्य उपस्थित करता है। आदमी जब मर जाता है तो क्या क्या होता है उसका वर्णन इस पद में किया गया है।

ऊंचा मंदिर मांडियाँ सोड वाड़ी ने सुतो,
काढो रे काढो एणे सहु कहे जाणे जन्म्योज न हतो।
एक रे दिवस एवो आवसे, मने सघड़ो जी साले,
मंत्री मड्या सर्वे कारमा, तेणुं पण कंइ नवी चाले॥

साव सोना नारे सांकड़ां, पहेरण नवा नवा वाघां,।
धोडु रे वस्तर एना कर्मनुं, ते तो शोधवाज लाग्या॥

चरू कढ़ाया अति घणा, बीजानुं नहीं लेखुं।
खोखरी हांडी एना कर्मनी, ते तो आगड़ देखुं॥

कोना छोरू ने कोना वासरू, कोना मां अने बापजी।
अन्तकाले जीव ने जावुं, एखलुं साथे पुण्य ने पाप॥

सगीरे नारी रे एनी कामिनी उभी टगमग जुवे।
तेनुं पण कंइ नवी चाले, बेठी धुस्के रुवे॥

वाह्ला ते बाह्ला शुं करो? वाह्ला वोड़ावी वड़शे,
वाह्ला ते वन केरां लाकड़ां, ते तो साथे ज बड़शे॥

नहीं रे त्रापां रे नहीं तुंबड़ी नहीं तरवानो आरो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयरत्न प्रभु इम भणे, मने भव पार उतारो ॥

एक बहुत बड़ा विशाल भव्य मकान है। भरापूरा परिवार है। पत्नी है, बच्चे हैं, संपत्ति है। इतने में उस मकान और संपत्ति के मालिक की मृत्यु हो जाती है। वह मुरदा होकर उस ऊंचे और भव्य मकान में पड़ा हुआ है। उस पर कफन डाला हुआ है, ऐसा लगता है मानो वह सफेद चादर ओढ़कर सो रहा हो। इतने में शहर के उसके निकट सम्बन्धी एकत्र होते हैं और कहते हैं कि इन्हें जल्दी निकालो भाई यहां से, मिट्टी की चीज जितनी जल्दी मिट्टी में मिल जाए, उतना ही अच्छा है। वे लोग उस घर के मालिक को इस तरह जल्दी निकाल ने की बात करते हैं जैसे यहां उसका जन्म ही न हुआ हो। जिस आदमी ने जीवन भर भाग-दौड़ कर एक-एक पैसा जोड़कर जिस मकान को बनवाया। रात-दिन मेहनत करके खाना-पीना हराम करके जिस संपत्ति को जोड़ा और बड़े कष्ट से जिस परिवार का पालन-पोषण किया, उस मकान और उस परिवार के बीच उसे एक क्षण भी अधिक रूकने नहीं दिया जाता। जब उसके जीवन का दीपक बुझ गया तो लोग कहने लगे- 'देरी क्यों कर रहे हो भाई, जल्दी निकालो इन्हें घर से।' लोगों द्वारा कहा जाने वाला यह कथन विचारणीय है।

जब शरीर रूपी सरोवर में से हंस रूपी जीवन निकलने लगता है, तब ये जो इन्द्रियां हैं कान, नाक, आंख, जीभ आदि सभी निरर्थक हो जाती हैं। इन इन्द्रियों को मंत्रीगण कहा जाता है। जैसा मंत्री कहता है वैसा ही राजा करता है। जैसा इन्द्रियों ने कहा, शरीर ने वैसा ही किया। कान ने कहां संगीत चाहिए, शरीर ने तुरंत संगीत दिया। नाक ने कहा सुगन्ध चाहिए और शरीर ने सुगन्ध दी। जीभ ने कहा मिष्ठान चाहिए, शरीर ने मिठाई दी। वे इन्द्रियाँ भी अन्त समय में काम नहीं आई।

जिस शरीर के लिए अनेक प्रकार के आभूषण बनवाए थे। सोने और चांदी के गहनों से जिस शरीर को सजाते थे। जिस शरीर को सौंदर्य प्रसाधनों से संवारा जाता था। जिस शरीर को नये से नये लेटेस्ट से लेटेस्ट फैशन के कपड़े पहनाते थे। वह शरीर जब निर्जीव हो जाता है तो केवल एक सफेद कफन की खोज की जाती है। उस शरीर को ढ़कने के लिए लोग एक ही कपड़ा काफी समझते हैं।

उस मुरदे को चार कंधों ने मिलकर उठाया। उसके आगे एक छोटी खाली हांडी उठा कर एक आदमी चलता है। यह खाली हांडी उसके कर्म की निशानी है। उस घर, परिवार और संपत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को छोड़कर जब वह जाने लगता है तब पता चलता है कि कौन बाप था और कौन बेटा, कौन पति था और कौन पत्नी । यहां सारे सम्बन्धों का अन्त हो जाता है । न साथ में बाप जाता है न मां जाती है । न पुत्र जाता है न पत्नी । न घर जाता है न प्रोपर्टी । उसके साथ जाते हैं जीवन में उसके द्वारा किए गए पुण्य और पाप । पाप और पुण्य ही जीव के सच्चे साथी है ।

जिस समय मृत व्यक्ति की अर्थी घर से निकलती है, उस समय सबसे अधिक करूण दृश्य उपस्थित होता है । उस समय उसके बच्चे, उसकी पत्नी, बहन और मां का करूण क्रंदन हृदय को चीर डालता है । बेटा ! बेटा ! कह कर मां रोती है । पिताजी ! पिताजी ! कह कर बच्चे चिल्लाते हैं और प्रियतम ! प्रियतम ! ! कह कर पत्नी आंसू बहाती है, पर वह मां का बेटा, बच्चों का पिता, और पत्नी का प्रियतम तो जंगल की लकड़ियों के साथ सो गया, वह उन लकड़ियों के साथ जलकर राख हो जाएगा ।

इस तरह जिस पर व्यक्ति अत्यधिक आसक्ति रखता है वह शरीर जलकर राख हो जाता है । मनुष्य जन्म लेता है, युवा बनता है और वृद्ध होकर मर जाता है । सब अनित्य और अस्थिर है । यह परिवर्तन यह अस्थिरता व्यक्ति को साफ दिखाई देती है, पर वह देखते हुए भी नही देखता । जो वास्तव में देखता है गहराई में उतर कर उसे निश्चित रूप से इन चीजों से विरक्ति हो जाएगी । ऐसे चिंतनशील व्यक्ति जो गहराई में उतर कर सोचते हैं, बिरले ही होते हैं ।

एक करकन्डु नाम के राजा हुए हैं । इस नाम के कई राजा हुए है । एक प्रत्येक बुद्ध करकुंड हुए हैं । किसी वस्तु को देखकर जिन्हें बोध (वैराग्य) हो जाता है, उन्हें प्रत्येक बुद्ध कहा जाता है । करकुंड का युवावस्था में ही राज्याभिषेक हो गया था । वे एक विवेकशील, चिंतक और धार्मिक राजा थे । नगर के ऊपरी भाग में उनका महल बना हुआ था । उस महल की खिड़कियों से पूरा नगर दिखाई देता था । एक झरोखा, जहां से नगर का मुख्य मार्ग दिखाई पड़ता था । राजा करकुंड शाम को उस झरोखे में बैठते थे और उस मुख्य मार्ग से आने जाने वालों का निरीक्षण करते थे । यह उनका प्रतिदिन का क्रम था । कई दिनों से वे एक अलमस्त सांड को देख रहे थे । सब उस सांड की ताकत से डरते थे । उसे कोई हाथ नहीं लगा सकता था । जो उसके सामने जाता था, उसे अपने सींगों से मार कर दूर भगा देता था । कोई दूसरा बैल उससे भिड़ने की हिम्मत नहीं कर सकता था । पूरे नगर में उसका आंतक छाया रहता था । राजा करकन्डु को वह सांड प्रतिदिन दिखाई देता था । वे उसे देखते रहते उसके लम्बे-चौड़े मांसल और बलिष्ठ शरीर को उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मदमस्त चाल को उसके नुकीलें सींगों को और उसके आंतक को ।

इस तरह पांच वर्ष बीत गए। सात वर्ष के बाद उस सांड का आंतक नगर में खत्म हो गया। क्योंकि वह अब बूढ़ा हो गया था। उसके लम्बे-चौड़े बलिष्ठ शरीर में अब कोई ताकत नहीं रही। उसके दृढ़ ससत्त्व पावों में अब कोई शक्ति नहीं बची। उन नुकीले सीगों में से नुकीलापन जाता रहा। उसकी मदमस्त चाल अब कंपन और अस्थिरता में बदल गई। उसके ऊपर कौवे बैठकर उसे चोंच मारने लगे। मक्खियां भिनभिनाने लगी। कुत्ते परेशान करने लगे। बैठ जाता तो उठना मुश्किल होता और उठ जाता तो चलना कठिन होता।

राजा करकुंड ने उसकी यह हालत देखी और वे दुःखी हो उठे। सोचने लगे। क्या जीवन की यही वास्तविकता है? यौवन इतना अस्थिर है? देखते ही देखते यह सांड कैसे मृत्यु के निकट पहुंच गया। इस रूप, बल और प्रभाव की यही अन्तिम परिणति है? जीवन की अगर यही वास्तविकता है, यौवन यदि इतना ही अस्थिर है, बल और रूप का अन्तिम परिणाम यही है तो मुझे सावधान हो जाना चाहिए। मुझे इस अस्थिरता में स्थिरता की साधना कर लेनी चाहिए। इस अनित्यता में नित्य की आराधना कर लेनी चाहिए। इस परिवर्तनशीलता में अपरिवर्तन की उपासना कर लेनी चाहिए। इस मेरे रूप की, मेरे बल की, मेरी युवावस्था की भी, एक दिन यही स्थिति होने वाली है। इस स्थिति के आने से पहले ही मुझे जागृत होकर इनका उपयोग अमरता की साधना के लिए कर लेना चाहिए।'

यह सोचकर राजा करकुंड ने राज्य छोड़ दिया और साधना का मार्ग पकड़ लिया। यह है संसार के परिवर्तन का वास्तविक दर्शन। संसार को देखना है तो करकुंड की नजर से देखें। संसार को संसार में होने वाली घटनाओं को, परिवर्तनों को, बदलाहटों को, अस्थिरताओं को सभी देखते हैं, पर यह देखना, देखना नहीं है। वह देखना किस काम जो भीतर के बोध का कारण न बनें। वह आंखें किस काम की जो बाहरी चकाचौंध में अपनी दृष्टि खो दें। आदमी की आंखों पर बाहर के आकर्षण की मोह की, ममत्व की पट्टी बंधी हुई है, जिस के कारण वह वास्तविकता का दर्शन नहीं कर पाता।

यह अनित्य भावना जब अपनी चरम सीमा को छू लेती है, तब यह मोक्ष का द्वार खटखटाने में भी सक्षम होती है। माता मरुदेवा की अनित्य भावना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

माता मरुदेवा का अपने पुत्र आदिनाथ पर असीम स्नेह और वात्सल्य था। पुत्र भरत, बाहुबली आदि को राज्यभार सौंपने के बाद उनकी इच्छा दीक्षा लेने की हुई। एक दिन प्रातः काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समय अपनी वृद्धा माता के चरणों में उन्होंने मस्तक रखा और कहा- 'मां, संसार में रहने की मेरी अवधि अब पूर्ण होती है। संसार के सभी कार्यों को मैंने व्यवस्थित और सुचारू कर दिए हैं। अब मैं सयम धारण करने के लिए जा रहा हूं। आप आशीर्वाद दीजिए।'

माता मरुदेवा ने समझा आदिनाथ किसी नगर में किसी काम से जा रहे हैं। इसलिए आशीर्वाद लेने आये हैं। उन्होंने उनके मस्तक पर हाथ रखा और वात्सल्यपूर्ण शब्दों में कहा- 'जाओ बेटा, संभल के जाना और जल्दी ही वापस लौट आना।'

आदिनाथजी ने दीक्षा ग्रहण की। विनिता नगरी, समस्त राजवैभव एवं सुख समृद्धि को छोड़कर उन्होंने जंगल का रास्ता पकड़ा। वे जंगल और पहाड़ों की गुफाओं में तपस्या और ध्यान करते हुए कर्म निर्जरा करने लगे। कभी वे पारणे के लिए नगर में आ जाया करते थे शेष समय उनका जंगल में ही बितता था।

माता मरुदेवा को चिंता हुई- मेरे पुत्र आदिनाथ आशीर्वाद लेकर किसी नगर में गए थे। अभी तक आए क्यों नहीं।

उन्होंने एक दिन भरत को बुलाया और पूछा- 'बेटा भरत, तुम्हारे पिताजी किसी नगर में गए हुए हैं। वे अभी तक लौटे क्यों नहीं? कब आएंगे? बहुत समय हो गया। मैंने उनका मुंह नहीं देखा, ऐसा क्या काम है वहां?'

महाराजा भरत को अपनी दादीमां की अज्ञानता और भोलेपन पर हंसी आ गई।

'दादी मां, वे किसी नगर में नहीं गए हैं, उन्होंने तो दीक्षा ले ली है। वे तो जंगल में तप कर रहे हैं। वे अब यहां नहीं आएँगे।' भरत ने माता मरुदेवा को समझाया।

माता मरुदेवा को विस्मय हुआ- 'दीक्षा लेली, यहां नहीं आएंगे? ! ! भरत यह तुम क्या कह रहे हो?'

भरत- हां, दादी मां, मैं ठीक कह रहा हूं। वास्तव में उन्होंने संसार छोड़ दिया है।'

माता- 'अर्थात् वे साधु हो गए हैं?'

भरत- 'हां दादी मां,।

माता- 'पर क्यों? यहां उन्हें किस बात की कमी थी। यह राज्य, यह सत्ता, यह महल, यह वैभव, यह संपत्ति, यह सुख उन के लिए कम था। और जब तुम्हें पता था तो उन्हें रोका क्यों नहीं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत- 'दादी मां, दीक्षा किसी बात की कमी होने पर नहीं ली जाती । यह तो वैराग्य होने पर ग्रहण की जाती है । उन्हें यह सुख यह वैभव वास्तविक नहीं लगा । उन्हें इनसे वैराग्य हो गया है । इसलिए उन्होंने यह सब छोड़ दिया है । और मेरे रोकने से वे रुकनेवाले नहीं थे । जिन्हें संसार से सच्चा वैराग्य हो जाता है, वे किसी के रोकने से नहीं रुकते ।'

माता मरुदेवा को ये वैराग्य की बातें समझ में नहीं आई । पुत्र वात्सल्य से भरा उनका मृदु हृदय न कोई तर्क सुनना चाहता था, न कोई वैराग्य की बात । उनकी वृद्धा आंखें पुत्र आदिनाथ को देखने के लिए तरसने लगीं ।

उन्होंने भरत से कहा- 'भरत, पुत्र आदिनाथ को जहां कहीं भी हो उन्हें बुला लाओ, अगर तुम उन्हें नहीं बुला सकते तो मुझे उनके पास ले चलो ।

महाराजा भरत आदिनाथजी को न बुला सकते थे, न दादी मां को उनके पास जंगल में ले जा सकते थे । उन्होंने कहा- 'दादी मां, ये दोनों ही बातें असंभव है । आप कुछ वर्ष और धीरज रखिए । उन्हें केवलज्ञान होगा, तब आपको उनके पास ले चलूंगा ।'

माता मरुदेवा विवश और लाचार थीं । पुत्र की स्नेहिल स्मृति को संजोकर रखने के सिवा अन्य कोई उपाय नहीं था । वे पुत्र वियोग में रोने लगीं । उनका वियोगी मातृ हृदय क्षणभर भी पुत्र को विस्मृत नहीं करता था । पुत्र वियोग में उनके आंसू रुकते नही थे । मेरा आदिनाथ मेरा आदिनाथ, की रटन हर क्षण उनके मुख में होती थी । सभी उन्हें समझाने का प्रयत्न करते थे, पर कोई उन्हें समझा नहीं पाता था ।

मेरे आदिनाथ जंगल में भूखे-प्यासे अकेले भटक रहे होंगे । न खाने के लिए अन्न, न सोने के लिए पलंग, न पहनने के लिए वस्त्र, न काम करने के लिए नौकर । वे वहां कितने दुःखी होंगे ।

इस प्रकार की कल्पना करके माता मरुदेवा रोती थीं । बार-बार भरत से कहती 'अब तो ले चलो, अब तो ले चलो ।' पर भरतजी हर बार टाल देते थे । वे भगवान आदिनाथ को केवलज्ञान होने का शुभ समाचार सुनने के आतुर थे ।

घोर तपश्चर्या के बाद जब कर्म क्षय हो गए तो भगवान आदिनाथ को पुरीमताल नाम के नगर के पास जो एक छोटा सा वन था, उस वन के बरगद के नीचे उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । वे इस काल के प्रथम केवलज्ञानी हुए । उसके बाद देवों ने समवसरण की रचना की । भगवान आदिनाथ समवसरण के सिंहासन पर आसीन हुए । उनकी देशना (उपदेश) प्रारंभ हुई ।

एक सेवक ने आकर महाराजा भरत को भगवान आदिनाथ के केवलज्ञान की शुभ सूचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दी। भरत के आनंद की सीमा न रही। वे माता मरुदेवा के पास पहुंचे। कहा- 'दादी मां, आज आपके पुत्र वियोग का अन्त हो जाएगा। अब चलिए तैयार हो जाइए। भगवान ऋषभदेव के दर्शन के लिए आपको ले चलता हूं।'

माता मरुदेवा तैयार हो गई। भरतजी और वे दोनों हाथी पर बैठ कर प्रभु के दर्शन के लिए चल पड़े। प्रभु के समवसरण के निकट पहुंचे तो देवदुन्दुभी और भगवान की दिव्य वाणी का अपूर्व संगीत उन्हें सुनाई दिया। माता ने पूछा- 'भरत, इतना मधुर संगीत कहां बज रहा है।'

भरत ने कहा- 'दादी मां, यह आपके पुत्र की महिमा है। वे मणि रचित सिंहासन पर बैठे हुए हैं। सैंकड़ों देव, मनुष्य, पशु और पक्षी उनकी दिव्य वाणी का रसास्वादन कर रहे हैं।'

'मेरे पुत्र आदिनाथ इतने वैभव के बीच जी रहे हैं। उनकी वाणी इतनी दिव्य है। मैं तो व्यर्थ ही उनका वियोग करती थी। इन्हें तो यहां कोई कष्ट नहीं है। इन्द्र आदि देव उनकी सेवा में उपस्थित हैं। मुझे इन्होंने बुलाया क्यों नहीं? अरे कोई संदेश ही भेज देते।

माता की आंखों से हर्ष के आंसू बहने लगे। इतने में वे समवसरण के सामने पहुंचे। माता ने अपने पुत्र को देखा तो दंग रह गई। प्रभु की अस्खलित वाक्धारा बह रही थी। माता ने उस दिव्य वाणी को सुनने का प्रयत्न किया। ये मेरे आदिनाथ क्या कह रहे हैं, जरा ध्यान से सुनूं तो। वे कान देकर सुनने लगी। भगवान आदिनाथ की दिव्य वाणी हवा में तैरती हुई आ रही थी 'संसार के समस्त सम्बन्ध अनित्य और अस्थिर हैं। संसार का सुख और वैभव क्षणभंगुर है और मनुष्य को वियोग देने वाला है। शाश्वत केवल आत्मा है, जो अजर और अमर है। मनुष्य को शाश्वत सुख शाश्वत की आराधना और साधना करने पर ही मिल सकता है।'

भगवान आदिनाथ की इस वाक् धारा ने माता मरुदेवा के भीतर के द्वार खोल दिए। उनकी वाणी माता के हृदय में उतर गई। मेरे आदिनाथ जो यह कह रहे हैं कि संसार के समस्त सम्बन्ध अनित्य और अस्थिर है, सत्य कह रहे हैं। यहां कौन किसका बेटा है और कौन किस की माता। यह संयोग-मिलन कब टूट जाएगा, कोई पता नहीं। मैंने व्यर्थ ही अपने पुत्र के वियोग में आंसू बहाए। न आदिनाथ मेरे पुत्र हैं, न मैं उनकी माता हूं। मैं तो इन सम्बन्धों से भिन्न एक स्वतंत्र आत्मा हूं। मेरी आत्मा तो अजर और अमर है। आत्मा ही परमात्मा है और वही शाश्वत है, माता की विचारधारा आगे बढ़ती चली गई। अनित्य भावना की चरम सीमा आ पहुंची और उन्हें वहीं हाथी के ऊपर केवलज्ञान हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस अनित्य भावना के द्वारा पर और स्व का ज्ञान होता है। संसार क्या है? मैं कौन हूं? संसार से मेरा क्या सम्बन्ध है? यह सम्बन्ध कितना टिकाऊं है? आदि सभी प्रश्नों के उत्तर अनित्य भावना में मिलते हैं।

जब व्यक्ति को अनित्य भावना के द्वारा संसार की वास्तविकता का और जीवन के उद्देश्य का पता चल जाएगा, तो निश्चित रूप से मन की परिणति भी निर्मल होगी ही। सांसारिक भोग्य पदार्थों एवं कषायों के प्रति मन की निर्लिप्तता ही मन की परिणति की निर्मलता है। जब संसार की अनित्यता समझ में आएगी, तो स्वभावत: मन उनसे उपर उठेगा। यही मन की साधना है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org